जब बाबा नागार्जुन देर रात कविता सुनाते थे

बाबा नागार्जुन एकमात्र ऐसे जनकवि साहित्यकार हैं, जिनके नाम का उच्चारण करते ही साहित्य और पत्रकारिता में गहरी रुचि रखनेवाले व्यक्तियों की जुबान पर भी उनकी एकाध पंक्तियां आ जाती हैं। सिर्फ हिन्दी में ही नहीं, बांग्ला, मैथिली, संस्कृत में भी बाबा नागार्जुन की काव्य पंक्तियां जनमानस में कबीर के दोहे, तुलसीकृत रामचरित मानस की चौपाइयां और उर्दू शायरी की तरह छायी रहती हैं। ऐसी अतुलनीय प्रभावशाली लोकप्रियता के शिखर स्तंभ पर विराजमान शलाका पुरुष हैं, बाबा नागार्जुन। उन्हें आधुनिक कबीर कहा ही जाता है। बाबा का व्यक्तित्व और कृतित्व यथार्थ में लोकचरित मानस पर केन्द्रित है।

बिल्कुल अभावग्रस्त आम आदमी की भांति जन-जन के बीच रमे-जमे रहनेवाले औघड़ बाबा जिस फक्कड़ता में जिए उसी को अपनी लेखनी में उतारा. 'ज्यों-की-त्यों धरि दीन्हीं चदरिया।' बाबा का निजी, पारिवारिक और साहित्यिक जीवन खुली किताब की तरह था। अंदर कुछ और बाहर कुछ वाली छद्म जिंदगी बाबा के उसूलों के खिलाफ थी। इसलिए बाबा की साहित्यिक शैली और जनसरोकार यात्राओं से जुड़े सारे पहलू स्पष्ट हैं. उनमें कोई दुराव छिपाव नहीं है। बाबा ने जो जिया, भोगा और अपने समाज तथा देश-दुनिया के जिन घटनाक्रमों ने उन्हें उद्वेलित किया, वही जीवनपर्यंत उनकी रचनाधर्मिता बनी रही। देश-समाज के हर वर्ग और समसामयिक उतार चढ़ावों के बीच पहरेदार की तरह बाबा सजग चेते रहते थे। इसके लिए बाबा नागार्जुन अखबारों के अलावा, देश, विदेश की विभिन्न पत्रिकाएं पैसे के अभाव में भी खरीदते थे।

घुमंतू बाबा नागार्जुन कहीं रवाना होने से पहले यह सोच-विचार नहीं करते थे कि कहां जाएं, किसके यहां ठहरें किसके घर 10-15 दिन या महीना दिन गुजारें। बस एक छोटा बक्सा, जिसके आधे में किताबें, पत्रिकाएं रहती थीं और एक छोटा रेडियो उठाया, बैठ गए ट्रेन के स्लीपर क्लास में। कहीं भी चल दिए, किसी भी साहित्य प्रेमी के घर पहुंच गए। उसके पद और हैसियत से नहीं, पारिवारिक परिवेश से सरोकार रखना बाबा का ध्येय था। इसलिए देश भर में ऐसे व्यक्तियों की संख्या अनगिनत हैं, जिनके पास बाबा के साथ बिताए क्षणों और अनुभवों के संस्मरण हैं। बाबा नागार्जुन के संपर्क में जो भी आए, जिनका भी बाबा से अंतरंग संबंध बना उसके जीवन में बाबा अमिट छाप छोड़ गए।

बाबा नागार्जुन कदाचित् इस मायने में भी अद्वितीय थे कि वैसे तो हर उम्र के व्यक्तियों के साथ रम जाते थे, मगर युवकों के बीच बैठना ज्यादा पसंद करते थे। समाज की बुर्जुआ सोच कहीं से भी नहीं उन्हें छू पायी थी। उनकी कविताएं भी बुजुर्गों से ज्यादा युवाओं के बीच लोकप्रिय हुई हैं। कहीं किसी के घर रहते हुए या कॉफी हाउसों में भी बाबा नागार्जुन नौजवानों से घिरे रहते थे।

बाबा के साथ गुजारे दिनों और आत्मीय संसर्ग के मेरे पास की कुछ संस्मरण हैं। कई अवसर आए, जब बाबा नागार्जुन ने अपने निराले व्यक्तित्व की अनूठी यादें छोड़ी। वो अद्भुत स्मृतियां मानस पटल पर आज भी ऐसे अंकित है मानो हाल-फिलहाल की बात हो। बिना किसी प्रयास के यह धरोहर तरोताजा बनी हुई है। मैं यह दावा तो नहीं कर सकता कि ऐसा अनुभव सिर्फ मुझी को प्राप्त हुआ है। हो सकता है, अन्य महानुभावों के पास भी हो। क्योंकि बाबा का संबंध सरोकार काफी विस्तृत और देशव्यापी था। एक यात्रा पूरी करने के बाद कहीं किसी के यहां पड़ाव डाले हुए बाबा अगली यात्रा की तैयारी में जुटे रहते थे। मैथिली साहित्य में बाबा नागार्जुन 'यात्री' नाम से ही प्रसिद्ध हैं। चिट्ठी-पत्री लिखने का सिलसिला तो बाबा की दिनचर्या का एक हिस्सा था।

बाबा से जुड़ा मेरा संस्मरण संभव है, पाठकों को थोड़ा भिन्न लगे। क्योंकि मुझे बचपन से लेकर पढ़ाई पूरी करने और पत्रकार बनने तक बाबा के संसर्ग में रहने का सौभाग्य मिला है। मेरा संबंध दरअसल नागार्जुन चचा से था। क्योंकि वे मेरे स्वतंत्रता सेनानी पिता श्री बहादुर खां के अनन्य मित्र थे। साहित्य पुरोधा बाबा नागार्जुन से मेरा परिचय बहुत बाद में हाईस्कूल की पढ़ाई करने के बाद हुआ।

इस बैकग्राउंड को ध्यान में रखते हुए अब आते हैं सीधे मुद्दे पर। बात 1978-79 की है, जब मैं पटना यूनिवर्सिटी से राजनीतिशास्त्र में एम. ए. कर रहा था। साहित्यिक माहौल मुझे पारिवारिक विरासत में मिला था। पिता साहित्य और संस्कृत शास्त्र के मर्मज्ञ। बड़े भाई रामचन्द्र खान आईपीएस अधिकारी होने के बावजूद साहित्य चिंतक। भाभी उषाकिरण खान। बाबा नागार्जुन उन दिनों दिल्ली प्रवासी हो गये थे, लेकिन उनका पटना आना-जाना हमेशा लगा रहता था। पटना में बाबा के रहने-ठहरने के कई स्थान थे। लेकिन वे प्रायः मेरे बड़े भाई के आवास में पहुंचते थे और ज्यादा समय वहीं रहते थे। उस आवास में भी बाबा नागार्जुन मेरे कमरे में ही सोना पसंद करते थे। मेरे वाले कमरे में ही बाबा के लिए एक चौकी पर बिस्तर लगा दिया जाता था। रात को सबके सो जाने के बाद हमारी रात की बात शुरू होती थी। विभिन्न प्रादेशिक भाषाओं के गीत रेडियो पर सुनने के बाद बाबा सो जाते हैं। दमा पीड़ित होने के कारण सांस फूलने पर बाबा जगते हैं और बलगम इधर-उधर नहीं फेंककर एक अखबार में लपेटकर बिस्तर के नीचे डालते जाते हैं। सुबह मैं उसे फेंक

दिया करता हूं। रात के डेढ़-दो बजे जगकर मसहरी में टॉर्च जलाकर लिखते मैंने बाबा को कई बार देखा। मेरी नींद में बाधा न पड़े, इसलिए लाइट की स्विच नहीं दबाते थे। कभी-कभी ऐसा भी हुआ, जब बाबा ने कविता लिखकर रात में ही जगाकर मुझे सुनाया।

बाबा को बाएं हाथ में टॉर्च जलाए लिखते समय मेरी नींद खुलती है और मैं देखकर फिर सो जाता हूं। उनसे कभी नहीं पूछा कि लाइट जला दूं या नहीं। ज्यों ही मैं सोता हूं कि बाबा जगाते हैं. उठो, बहुत सोते हो, आज तो तुम सबेरे सो गए थे, सुनो. 'खेतों में बंदूकें बनती टके सेर तो बम बिकता है

मेरी छिटपुट कविताएं छपी थीं और अखबारों में लेख नियमित छपने लगे थे। बाबा सब पढ़ लेते थे। उसके आधार पर बाबा नागार्जुन ने रात को ही सीख दी. 'तुम्हारे गद्य लेखन में प्रवाह है, कविता में बीच-बीच में ठहराव आ जाता है, जो ठीक नहीं है। इसलिए लेख पर केंद्रित करो, तुम्हारे लिए सफल गद्यकार बनना आसान है।' और मैं अखबारी लेखन और पत्रकारिता के रास्ते पर चल पड़ा। जब कदम बढ़ाया तो पीछे मुड़कर देखने की नौबत नहीं आयी।

बाबा के साथ मध्य रात्रि संवाद के कई यादगार प्रसंग हैं। सबको समेटें तो पूरी पोथी तैयार हो जाएगी। लेकिन यहां सीमित समय और शब्दों में उन चंद पलों का जिक्र कर रहा हूं जो बाबा के काव्य कर्म का प्रथम या रात के दूसरे पहर के भाग्यशाली श्रोता के रूप में गुजरे।

बाबा नागार्जुन ने अघोरपंथ से मिलता-जुलता जीवनवृत्त अपनाया था। न वे नहाते थे, न दांत साफ करते थे। कपड़े या बिस्तर की साफ-सफाई की भी परवाह नहीं करते थे। बाबा नास्तिक नहीं थे, पर पूजा-पाठ पोंगा पंडित में भरोसा नहीं करते थे। बाबा वामपंथी रुझान के थे, मगर कम्युनिस्ट नहीं थे। कम्युनिस्ट कट्टरपंथ से वे चिढ़ते थे। एक रात बाबा ने संस्कृत में लिखे पद्य सुनाए, जो कालिदास रचित महाकाव्य 'कुमारसंभवम्' सदृश शिव-पार्वती विवाह से संबंधित थे। वो कविता मुझे ठीक याद नहीं है। लेकिन बाबा ने बताया था कि उन्होंने इसमें कालिदास की शैली वाले छंद का प्रयोग तपस्यारत पार्वती के सौंदर्य वर्णन के लिए किया है। बाबा का 'भस्मांकुर' प्रबंध काव्य उसी उपजाति छन्द पर लिखा गया है।

पढ़ाई खत्म करने के कुछ महीनों बाद मैं दिल्ली आ गया और जीवन का दूसरा अध्याय पत्रकारिता के रूप में शुरू किया। बाबा नागार्जुन ने पहले से ही दिल्ली को निवास स्थान बनाया हुआ था। वे वहीं से ही घुमक्कड़ी से लौटकर दिल्ली में आकर टिकते थे। 1983-84 के वर्षों में बाबा उत्तर पूर्वी दिल्ली के यमुना विहार में रहते थे। बाद में पुरानी दिल्ली के सादतपुर में रहने लगे, जो उनका स्थायी निवास हो गया। सादतपुर को अब नागार्जुननगर के नाम से जाना जाता है। 1985-86 में नवभारत टाइम्स छोड़कर मैं पीटीआई भाषा, दिल्ली में संवाददाता नियुक्त हुआ और लक्ष्मीनगर के कृष्णकुंज मुहल्ले में रहने लगा। एक दिन तय हुआ कि बाबा को सादतपुर से लाया जाए और उनका प्रिय भोजन मछली-भात खिलाया जाए। हम और मुकेश कुमार साथ रहते थे। हमलोग जब पहुंचे तो बाबा पुत्रवत स्नेहवश तुरत तैयार हो गए। हम एक बंगाली मोशाय के मकान में रहते थे। बाबा को देखते ही बंगाली परिवार गदगद हो गया। मैंने पूछा कि कैसे बाबा नागार्जुन का नाम और चेहरा पहचाना। बंगाली मोशाय की बेटी ने जवाब दिया. बाबा की कविता मेरे बांग्ला कोर्स की किताब में है और उसमें उनकी ऐसी ही खद्दर कुर्ता पायजामा वाली तस्वीर छपी हुई है। लड़की ने बाबा को बांग्ला कविता की एक-दो पंक्ति सुना भी डाली। संभवतः कुछ पाठकों को पता न हो कि बाबा की कविताएं बांग्ला में स्कूल से लेकर कॉलेज तक के पाठ्यक्रम में शामिल है। स्वयं बाबा ने ही मुझसे कहा था कि यात्रा में अब इस बुढ़ौती में बड़ी दिक्कत होती है। सरकारी मदद अनुदान नहीं चाहिए। अगर प्रथम श्रेणी का पास रेल मंत्रालय उपलब्ध करा दे तो काफी हद तक सहूलियत हो जाएगी और आराम हो जाएगा। लेकिन स्वतंत्रता सेनानी वाला फर्जी पास नहीं चाहिए। मैं स्वतंत्रता आंदोलन में शरीक रहा हूं, मगर भारत सरकार को इसका प्रमाण नहीं दे सकता। मेरी ख्वाहिश एक ऐसे साहित्यकार के रूप में प्रथम श्रेणी रेल पास पाने की है, जिसकी पुस्तकें देश की 18 यूनिवर्सिटी में पढ़ाई जाती है।

बहरहाल, बाबा ने भोजन समाप्त करने के बाद बांग्ला पाठिका की श्रद्धा और आदर से प्रभावित होकर उसके लिए बांग्ला में कविता की दो-तीन पंक्तियों के साथ अपने ऑटोग्राफ दे दिए।

उन्हीं दिनों साहित्य अकादेमी का वार्षिक पुरस्कार समारोह कवर करने के दौरान तत्कालीन साहित्य अकादेमी सचिव के. सच्चिदानंदन से मेरी लंबी बातचीत हुई। बाबा गंभीर रूप से अस्वस्थ रहने लगे थे। मैंने सच्चिदानंदन से आग्रह किया कि बाबा नागार्जुन साहित्य अकादेमी सम्मान प्राप्त साहित्यकार हैं और हिन्दी, मैथिली, बांग्ला के चोटी के गिने-चुने मनीषियों में से हैं। अर्थाभाव के कारण उनका समुचित इलाज नहीं हो पा रहा है। साहित्य अकादेमी की ओर से बाबा के लिए मानदेय की व्यवस्था अगर हो जाती तो बड़ा पुण्य का काम होता। सचिव महोदय ने कहा कि इसके लिए विमर्श किया जाएगा। यह टालनेवाली बात थी। बाबा स्वर्ग सिधार गए, साहित्य अकादेमी मानदेय पर विचार करती रह गयी। शायद अकादेमी ने इसे विचारयोग्य समझा भी न हो। लेकिन उसी साहित्य अकादेमी से 1998 में बाबा की मृत्यु के बाद जब मैंने शोक सभा के लिए जगह मांगी तो तुरंत देने को तैयार हो गया। उस शोक

सभा का रोचक और दुर्भाग्यपूर्ण पहलू यह था कि साहित्य अकादेमी के कोई अधिकारी उसमें शामिल नहीं हुए। प्रमुख व्यक्तियों में डा. वेदप्रताप वैदिक और दिवंगत प्रभाकर श्रोत्रियजी की उपस्थिति उल्लेखनीय रही। बाबा का देहावसान अपने गृह जिला दरभंगा के मुख्यालय लहेरियासराय में नवंबर, 1998 में हुआ। अंतिम समय तक उनका हालचाल लेने कोई सरकारी गुमाश्ता नहीं गया। बिहार सरकार के सर्वोच्च सम्मान राजेंद्र शिखर पुरस्कार बाबा नागार्जुन को प्रदान करने की कहानी सुनिए। मैं उसका प्रत्यक्षदर्शी था चश्मदीद गवाह हूं। उस वक्त बिहार के मुख्यमंत्री लालू प्रसाद थे और मेरा दिल्ली से पटना तबादला हुआ था। ध्यान रहे कि लालू प्रसाद उसी जे पी आंदोलन से उपजे नेता हैं, जिसमें भाग लेकर इंदिरा गांधी के खिलाफ कविता पढ़ने के कारण बाबा जेल गए थे। बाबा की तबीयत बिगड़ जाने के कारण उनके बड़े पुत्र शोभाकांत जी के साथ जाकर 1975 में इमरजेंसी में बाबा की अग्रिम जमानत मैंने करायी थी। लालू प्रसाद यादव जब बिहार के मुख्यमंत्री थे, उस वक्त बाबा नागार्जुन ज्यादा ही बीमार रहने लगे। शोभाकांतजी दरभंगा में रहते थे, इसलिए बाबा दिल्ली छोड़कर दरभंगा में स्थायी निवास करने लगे। यात्रा करने की स्थिति में नहीं थे। घटना 1994 की है। मैं दिल्ली से तबादला होकर पीटीआई भाषा संवाददाता के रूप में पटना ब्यूरो कार्यालय आ गया था। उसी समय बिहार सरकार ने अपना सर्वोच्च साहित्य पुरस्कार राजेन्द्र शिखर सम्मान बाबा को प्रदान करने का फैसला किया। निर्देश के अनुसार दरभंगा के जिला मजिस्ट्रेट ने बाबा को इसकी जानकारी दी और उन्हें दरभंगा से पटना लाने की व्यवस्था की गयी। बाबा नागार्जुन 'स्टेट गेस्ट'(राजकीय अतिथि) थे, इसलिए उन्हें राजकीय अतिथि की तरह पटना में ठहराया गया। राजेन्द्र शिखर सम्मान बिहार के मुख्यमंत्री लालू प्रसाद को प्रदान करना था। पुरस्कार समारोह का आयोजन स्थानीय श्रीकृष्ण मेमोरियल हॉल में किया गया। पुरस्कार राशि के चेक के साथ लालू प्रसाद ने बाबा नागार्जुन को च्यवनप्राश का एक डिब्बा पेश किया और शॉल ओढ़ाया। उस अवसर पर लालू प्रसाद ने अपनी चिरपरिचित भोजपुरी में आह्लाद व्यक्त किया. रौआ के हम जाए न देब बाबा, रौआ के जियावे के बा(हम आपको जाने नहीं देंगे बाबा, आपको जिलाए रखना है)।

पुरस्कार समारोह समाप्त होने के बाद बाबा के साथ मैं राजकीय अतिथि गृह के कमरे तक आया। बाबा ने कुछ खाने की इच्छा व्यक्त की। ब्रेड मंगवाया गया, लेकिन साथ में मक्खन या और कुछ लाने से बाबा ने मना कर दिया। अब आगे का आंखोंदेखा हाल पढ़िए। बाबा च्यवनप्राश का डिब्बा खुलवाते हैं और खुद ब्रेड का पैकेट फाड़ते हैं। ब्रेड का एक स्लाइस हाथ में लेकर अपने से चम्मच से च्यवनप्राश निकालते हैं और मक्खन की तरह, ब्रेड में लगाकर खाने लगते हैं। दूसरे स्लाइस में च्यवनप्राश लगाते हुए बाबा अपने निराले व्यंग्यात्मक अंदाज में टिप्पणी करते हैं. इस च्यवनप्राश का स्वाद तो गजब का है प्यारे, सरकारी है न। च्यवनप्राश तो मैंने खाए हैं। मगर ऐसा कमाल का मजेदार स्वाद पहले कभी नहीं मिला। अभिनय में लालू प्रसाद शत्रुघ्न सिन्हा का नाना है, देखना लालू की नटलीला इसे दुबारा मुख्यमंत्री बना देगी।'

जो पाठक बाबा नागार्जुन की तीखी और खुरदरी व्यंग्य की विशिष्ट शैली से परिचित हैं, उन्हें भी सरकारी उपहार में प्राप्त च्यवनप्राश ब्रेड में लगाकर खाने वाला प्रयोग शायद पहले से पता नहीं होगा। टिप्पणियों में सरकारी से लेकर हर राजनीतिक, सामाजिक कुरीतियों को निशाना बनाते थे। बाबा को पद्य और गद्य दोनों ही गहराई तक छेदते थे। सबसे ज्यादा बाबा ने सरकारी व्यवस्था की बुराइयों को उभाड़ा। इसलिए सम्मान के नाम पर बाबा से व्यवहार भी वैसा ही किया गया। शिखर सम्मान समारोह के ही दिन शाम को अतिथिगृह के स्टाफ ने बाबा नागार्जुन और उनके पुत्र शोभाकांतजी से कमरा खाली करा लिया। कहा गया. 'बुकिंग गत रात से लेकर सम्मान समारोह तक के लिए थी।' यह मेरे जेहन का कभी न सूखनेवाला जख्म है। जितनी बातें बाबा की हमेशा याद रहती हैं उनमें कविताओं की तरह पत्र लिखने की भी उनकी विशिष्ट शैली है। नाम पहले. 'शशिधर, प्रिय' जैसे स्नेहपूर्ण लहजे में बाबा अपने से छोटे को पत्र लिखते थे। इसमें 1966 में पटना के भिखनापहाड़ी में रहते हुए 'काकी' के हाथ से भूंजा खाना भी याद आता है। उस वक्त मैं मिडिल स्कूल का छात्र था और चचा नागार्जुन निकट ही महेन्दू मोहल्ला में शास्त्री भवन में रहते थे।

बाबा के साथ-साथ कवि केदारनाथ सिंह और गुणाकर मुले भी सम्मानित किए गए। तीनों को राजभाषा विभाग की ओर से पर्यटन विकास निगम के होटल में ठहराया गया। होटल के कमरा नं. 102 में एक चरमराते पलंग पर बैठे 83 वर्षीय बाबा ब्रेड पर च्यवनप्राश लगाते हैं और अपनी व्यंग्यात्मक स्टाइल छेड़ते हैं। लालू समारोह में कहता है. 'रउआ के जियावे के बाबा, हेतना जल्दी हम जाए ना देब, हई ली च्यवनप्राश के डिब्बा।' इसके बाद बाबा के उद्गार. 'हां, हड्डी तो गल रही है, अब लालू मेरी खलड़ी(चमड़ी) के लिये मुझे जिंदा रखना चाहता है। देखो तो च्यवनप्राश किस ब्रांड का है, इतना प्रचार हो रहा है, उसे भुगतान करना चाहिए।'

कमरे में बाबा से बातचीत के दौरान होटलवाला दो बार बिल के बारे में पूछने आ गया। बाबा के सबसे बड़े पुत्र, शोभाकांतजी के यह कहने पर कि 'भुगतान राजभाषा विभाग की ओर से किया जाएगा'। बैरा आश्वस्त नहीं होता। थके बाबा को जरा-सी झपकी आयी कि टैक्सी वाला भुगतान मांगने आ गया। बाबा

ने अपनी लाचारी बताकर राजभाषा विभाग से पटना आने के लिए वाहन की व्यवस्था करने कहा तो सरकारी गाड़ी की जगह टैक्सी भिजवाकर विभाग ने किनारा कर लिया।

समाप्त